राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

शब्द बोलते हैं

माया मृग

परम मित्र
स्व० हरदत्त की
स्थायी स्मृति में

अनुक्रम

राम नहीं था

□ अमानवता

···और धीरे-धीरे
छंट गई
वह काली सी रात
अमावस्या की
जिसे
दीवाली कहा लोगों ने।
मैं तो
अलसाया सा
रात के निस्सार में
कोई सार खोजने की
चेष्टा करता रहा।
सोचता हूं
दीवाली थी
राम आए होंगे
मेरे नहीं तो
किसी और के घर
शबरू के झोंपड़े पर
या लखमीचन्द की
अटारी पर
हो सकता है
मेहरबान हुए हों
किसी शराबी पर
किसी जुआरी पर।
पूछा मैंने शबरू से
रात तो दीवाली थी ?

था गाँव
राम यहाँ कभी भी
नहीं आए
बिना कारण भी
दीवाली थी।
राम आए तो
दीवाली हुई,
सुना था।
हाँ, मैंने कहा
फिर भी गाँव
रात दीवाली का
नाम नहीं था
रात भर
रम थी, रमा थी
पर राम नहीं था।

एक चांद

☐ यथार्थ/अपूरणीय

दीपो की
उजली चादर
हटाकर देखा
तो
नीचे नीम अन्धेरा
था ।
ऊहूँ
सच्ची दीवाली तो
ये है
बाहर के नाटक
से परे
यह कितना ठीक है
लाख दीप जलकर
भी
एक चाद नही होते

अखण्ड चांद

□ [illegible]

हालांकि एक हिस्सा
चांदनी
मेरे बंटवारे में
आती है
जिसे मेरा हक कह
मैं अपने मकान को
रोशन कर सकता हूं
या कि चाहूं तो
इसकी किरण-किरण
के धागों को
किसी मजबूत रस्सी सा
बटकर
बांध सकता हूं
खूबसूरती को अपने लिये
पर मैंने हमेशा
पूरे का पूरा चांद
अपने सिर पर
तैरता पाया है
कभी यह जरूरत या
ख्याल महसूसा ही
नही कि
चांद में मेरा भी
हिस्सा है।
मैं चांद को

टुकड़ों में बांटकर
अपने हिस्से की
चांदनी तलाशता
पर
अपने हिस्से के
लिए
जरूरी नही
चांद तोड़ा ही जाए।

अलाव
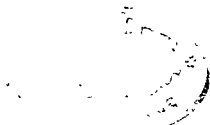
"कबिरा खडा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर फूके अपना, चले हमारे साथ ॥"

कुहराती, ठण्डाती रात में
दूर अलाव तापती
बस्ती की आवाजों का
पिघला सीसा
तुम्हारे कानों में
पड़ता है, और तुम
व्यग्र, बेचैन हो जाते हो
कभी-कभी नाखुश हो,
चिढ़ते भी हो।
इस रेलम-पेल को
चीरकर बस्ती
कितना आगे बढ़ गई है,
सूरज से दौड़ लगाते
थके-चूर तुम्हारे साये
जब बिस्तर में
दुबक जाते हैं तो
देर रात तक बस्ती
अलाव तापती, नाचती
और गाती है।
तुम भी कभी-कभी
कोशिश तो करते ही हो
बदले में सीसा
उ ड़ेलने की

पर
अपनी झोंपड़ी जलाकर
अलाव तापते
नाचना
इतना आसान नही होता

प्यासी मां

(रेगिस्तान में अन्तःसलिला की अवधारणा पर आधारि

ओ मरु मां !
तुम प्यासी हो ना ?
सदियों से अनबुझी है
ये तुम्हारी प्यास मां
लेकिन अभी तू
मत हो 'निरास' मां
तू जन्मदात्री है
जानती है मां
प्रसव-पीड़ा बिन भला
जीवन जन्मता है क्या ?
पीड़ा को झेल मां
समझ ले इसे तू
नव जीवन का खेल मां
किलकारियों का ध्यान कर
आंख बन्द कर ले
सास तेज होने दे पर
सिसकी मद कर ले
आंखों में सपने ले ले
होठों को भीच ले मा
आंसू का नीर पी ले
भीतर को सींच ले मा
सदियों सही है पीडा
बस झेल और पल भर
रेतीली कूख से मां
तू जीवन पैदा कर

बे-क़ायदा

☐ पराधीन/ईश्वराधीन

जब भी मैं
जागने की
कोशिश करता हूं
सो जाता हूं।
पर अक्सर
जागता हूं
जब भी बाकायदा
सोने की
कोशिश करता हूं।
यह बात
सीधे तौर पर
मुझे समझाती है
कि जीवन
बाकायदा नहीं
अपनी ही
मरजी से
चलता है।

अबाध

□ प्रकृति से

कुछ भी
मांगने की
मत सोचिए
कोशिश तो
कराई न कीजिए
बेरोक-टोक
जीवन में
कोशिशों का
शामिल होना
जीवन संवार तो
सकता है
पर जीवन
बना नही सकता
कोशिशों से
संवारा जीवन
जीवन नही
सिर्फ आपको
कोशिशों का
भुगतान है।

सिजदा

□ रागानुभूति

वो जो नाम
लिखा था
रेत पर
जिसे मैंने
सिजदा किया
तुम नहीं
देख पाए
तुम्हारे आने तक
तेज हवा
वह नाम
उड़ा ले गई
...और
बाकी लोगों की
तरह तुमने भी
मुझे हर बार
रेत को
सिजदा करते देखा।

केवल आज

☐ वर्तमान में

अतीत,
जो पानी का बुलबुला है,
टूट जाने पर
देर तक नमी का
अहसास दे सकता है
पर यह मान लेना,
कि वह
बुलबुला फिर से
जन्मेगा नमी की
कोख से,
आपकी वेदना बढ़ाने
वाला ही विचार होगा।
भविष्य,
पारे की बूंद है
चांदी सी चमकती
वक्त आने पर
खुद सिमट कर
आपके अन्दर का ताप
बतायेगी
पर अभी इसको पकड़ने
की कोशिश
केवल छिटकाव है,
भटकाव है।
वर्तमान,

बहती धारा है
आपको चुपचाप
बहना है
क्योंकि आप
अतीत की नमी
हाथ पर लेकर
भविष्य का पारा
पकड़ने की
मूर्खता करके
इतिहास में उपहास
का पात्र
नही बनना चाहेंगे।
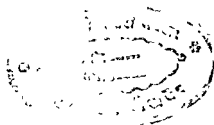
बात एक बात की

☐ उपेक्षितों को

मैं

वो बात हूं जो
दो बातों के
बीच में से कहीं
शुरू हुई और
तीसरी बात से
पहले ही कहीं
खत्म कर दी गई ।
कहने वालों को
तो शायद अब
याद हो न हो
उन्होंने मुझे
दुग्धल और मधुर
बात कहा था
चांद की चर्चा जैसी !
हां कहा था
और फिर मैं
आसनों के आस-पास
बिखरे
केले के छिलके की सी
बात हो गई ।
जो भी आया
फिसलकर बात
बदल गया ।
आधी रात तक

बतियाने के बाद
सब
अपने-अपने घरों
को चल दिए
...और बाकी रात
दुग्धल चाद
मेरी आंखो में
चुभता रहा।
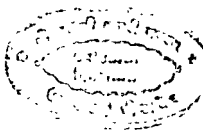
सिर्फ सीटी बजाता है।

(रहस्यवाद की महान कवियित्री स्व० महादेवी
चरणों में)

बता न मां
कौन है वह
जो यह सब नही है
जिसे भागकर भी नही
पकड़ पाया कोई
तो कोई बैठे-बिठाये
उसी का हो गया
मां,
कौन है वह जो
सूरज की गरम रोशनी
से चमकते चांद को
ठण्डा रखता है;
जो रंगहीन गैसो के
पुञ्ज को,
आकाशी रग देता है,
किसकी सत्ता है जो
पानी थोड़ा होकर
किसी रंग का नही
पर घना होते ही
आकाशी हो जाता है;
कौन है वह जो
पानी को रंग
आकार, स्वाद
गुण-निर्गुणता से

अलग रखता है,
मा,
कौन है वह जो
थोड़े से शब्दों में
बहुत कुछ कहने
की शक्ति भरता है,
कौन है जो
अन्दर बैठा धीमे-धीमे
कविता गुनगुनाता है ?
मा
मुझे मिलवा दो ना उससे
जो सारे संसार को
कठपुतली सा नचाता है
और खुद
किसी चादर के पीछे छिपा
सिर्फ सीटी बजाता है।

आवाजों के बीच

☐ आत्मा से

शहर के चीखो-पुकार में
ऊँचे हार्न की
आवाजों के बीच
गुजरते-चलते मैं
देखता हूं/पाता हूं
आवाजों के उभारों
और चढ़ावों के बावजूद
बहुत साफ सुनती है
मुझे अपनी साईकिल की
रिरियाहट, घरघराहट।
बहुत हल्की-धीमी पर
कितनी साफ !
पता नहीं कौनसा
नियम है कि
बाहर के शोरोगुल में
भी सुरक्षित रहती है
भीतर और करीब की
धीमी-सिसकती आवाजें।
चारों ओर के,
नक्षत्रों से फैले वाहनों
के बीच
मैं/मेरी साईकिल
किसी उपग्रह सा
अपनी ही आवाजों में
डूबा हुआ
प्रयासरत -लगातार

बेनज़ीर

☐ आत्मबोध

मेरा ख्याल है
अपने को बेहत्तर
महसूस करने के लिए
आप पत्थरो में रहे।
आप बोल सकते हैं
सुनते हैं, लिखते हैं
और सोच सकते हैं
पर पत्थर नही।
बस, यही आप
बेहत्तर हैं खूबसूरत है
और उम्दा है।
पत्थर से अलग हो
अपनी अलग पहचान लेकर
पत्थरो को चिढ़ाइये।
आने वाला वक्त
पत्थरो पर आपके
कदमो के निशान देखकर
आपके बेहत्तर, खूबसूरत
और
बेनजीर होने की
घोषणा करेगा।
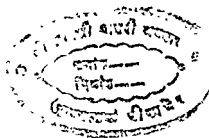
आँख में

[] दृष्टिकोण

और अब
जबकि हर चेहरा
तुम्हें दूसरों से
बड़ा नजर आता
है
दोष चेहरों का नहीं
तुम्हारी आँख
का है।
फिर से देखो
चाँद वही है
दूध सा सफेद
खूबसूरत।
काला धब्बा जो
तुम्हें चाँद में
नजर आता है
तुम्हारी आँख में है।

कसौटी

□ सत्य से

चट्टान की
खूबसूरती से
प्रेम कीजिए।
मगर यह न
भूलिए कि
चट्टान, आपकी
उम्मीद से कहीं
ज्यादा कठोर है।
यही नही
आप चट्टान से
टकराकर
लहु-लुहान हो
सकते है।
हां, यदि आप
यह सब
पहले से जानते
हैं, तो वाकई
आप चट्टान से
प्रेम करते है
आप काबिल है।

आकण्ठ डूब
कोई पतित,
पावन होना चाहता हो !
बरसों की कालिख
धोकर, बार-बार
दर्पन् निहारता है
शहर, मेरा अपना शहर
धुला-पुछा
एक नए चेहरे वाला;
मुंह धो जो लिया है
शहर ने
धाराधार बरसात मे।

आँधी थी

□ मालिक

ये जो
धीमी सी, ठन्डी सी
हवा बही है और
सिहरा गई है
तन-मन को,
जिसे तुमने
अपना सा समझ
गले लगा लिया है;
तुम्हारे अस्तित्व को
उखाड़ फेंकने चली
एक आंधी थी,
धूल भरी-पीली काली
लाल आंधी।
पर सचमुच
कायल हूं तुम्हारी
चतुराई का।
छिड़काव कर
सारी मिट्टी तो
तुमने
पहले से ही जमा
दी है।
अब आंधी, हवा है
वह हवा
जो आंधी थी।

सब्र

☐ आग्नतोष

यदि सड़क पर
गुजरते,
तुम्हारे लडखडाते
साईकिल के
बहुत पास से
कोई तूफान-गति का
ट्रक,
तुम्हें धूल से
भर देता है तो
सोचो
तुम्हें क्या करना है ?
पहले हाथ-मुंह झाड़ो
फिर सोचना
ट्रक की गति
के बारे में।
समझदार लोग
लडखडाती साईकिल
के भरोसे
तेज गति के
ट्रक का पीछा
नही किया करते
सिर्फ सब्र
किया करते हैं।

रोक लो, फिर सोचना
और
बार-बार लिखना
कोई भी कविता
मरू पर

कूबड़

☐ सेनानियों को

इनके टेढ़े, बेढब
शरीर पर
हंसने से पहले
सिर्फ एक बार
सोच लेना;
ये हँसी तुम्हें
शदियों पीछे
धकेल देगी।
क्योंकि जिनकी
पीठ का कूबड़
तुम्हारी हँसी का
सबब/कारण है
वक्त को
पीठ पर ढोकर
यहां तक
यही लोग लाए हैं।

अधबीच

(उनके प्रति जो आज भी भूत और भविष्य में उलझे वर्तमान को बेचैन सा जी रहे हैं।)

बस तेज गति से
फिसलती सी
सड़क के चिकनेपन की
भ्रांति को
और मजबूत करती हुई।

दोनों ओर के वृक्ष
झंखाड़-झाड़ियां
पराजित से
पलायन करते हुए
पीछे और पीछे जाते
जैसे उनकी दौड़ का
लक्ष्य कहीं
पीछे छूट गया हो।

बस में बैठी
किसी सवारी के सामने
पीछे दौड़ते वृक्ष हैं
और आगे दौड़ती बस।

किंकर्तव्य विमूढ़ हुई
सवारी चुप है
ठहरी है, उलझकर
बीच में कहीं
अटकी सी

मुसाफ़िर मित्र !

☐ 'बाट' की पहचान कर ले

पानी की सपाट
सड़क पर जाते
मेरे मुसाफिर मित्र,
यह पानी की सड़क नहीं
सड़क पर पानी है।
पत्थरों और कोलतार के
किसी मिले-जुले
षडयंत्र का परिणाम !
पानी तो बस अपना
रूप छिपाने को
ओढ़ा है इसने !
यह अब भी वही
पथ है जिस पर
चलने से कतराते थे
तुम !
टूटी-फूटी सड़क गड्ढे
और नुकीले कंकर।
अब बरसात ने
जो ढंक दिया है इसे
तो सपाट नजर
आती है।
मेरे मित्र
सड़क के गड्ढे कभी
किसी के सगे नहीं

होते
फंसकर गिरे किसी भी
यात्री के शरीर पर
अपनी छोटी सी भी
मुलाकात के निशान
छोड़ देते हैं।
फिर पानी ही क्या
जख्म भरता है?
जरा रुक जाओ।
बरसात का पानी
बह जाने दो।
कंकरीले रास्ते पर
हो सही, फिर भी
सड़क के असली
रूप को देखकर ही
चलना अच्छा है।
यानी की सपाट सड़क
का भ्रम
बह जाने तक
ठहर जाओ
मुसाफिर मित्र!

रोशनी के टुकड़े

(आत्मबोध की मृगतृष्णा में भटकने वालों के प्रति)

गगन का गहन काला अंधेरा,
उस की पसरती परछाई
और उस पर जिन्दगी की
बगल में लेटा यह आदमी।
घूमती रात के साथ
प्रतिपल कोई गरल, कोई
नाराज ढूंढने की कोशिश में।
यह जो जिन्दगी है,
भोगता है उसको, हर तलाश में
उसे एक नया अनुभव
देना चाहती है।
आदमी उसकी देह के भीतर छिपी
आत्मा को, अपनी आत्मा की
आँखों से देखता है।
इस बीच यह एहसास उन्हें
नहीं डस पाता कि
काल-कोटरी में गहन अंधकार है।
अचानक,
रोशनी का एक टुकड़ा
तैरता हुआ गुजरा ऊपर से
वह और जिन्दगी
जिन्दगी और वह
सहमे-सहमे से देखते है
उस ओर।

पुञ्ज रोशनी का, रोशनदान से
बाहर हो लिया।
आदमी दौड़ा, पीछे, छोड़
जिन्दगी को।
रोशनी के टुकड़े मगर, कभी
आदमी की मुट्ठियो में
सिमटते नही देखे गए।
लौटा व्यक्ति, अन्धेरे से
भय खाता है अब तो
रोशनी की धुन है उसे।
जिन्दगी आज भी उसकी
बगल में लेटी है।
वह कुछ नही तलाशता पर
वह कुछ नया देना चाहती है।
आदमी की आत्मा की आखो में
वह चौंध, अन्धेरा ही
भरती है।
इसीलिए शायद सम्बन्धों की
आत्मीयता दैहिक हो गई है।
आदमी कामुक सा,
खीझा हुआ, एकाएक
टूट पड़ता है और
नोचने लगता है जिन्दगी।
'और अब जिन्दगी उसे
चाहकर भी तो
कुछ नही दे पाती।
(रोशनी के हादसे अक्सर यू ही हावी हो जाया करते हैं।)

हठ रहने दो

☐ यथार्थ पर/आग्रह वश

☐ चारण-कवियों के प्रति

हठ रहने दो मित्र !
स्वर्ण तूलिकायें,
कैनवास पर उगलती है
बस सुनहरी रेखायें।
कविता के रंग हमेशा
सुनहरी नही होते।
आभूषण गढ़ लो
अलकृत-मनोहर रूप पर
सहस्त्रों कवितायें
रची जायेंगी पर
ठीक नही सोने से
कलम गढ़ना।
युगपृष्ठो पर स्वर्ण-कलम
काली रोशनाई मे
डूबी होकर भी
हरपृष्ठ सुनहरा कर देगी।
नहीमित्र !
इतिहास को भ्रामक होने से
बचा लो
यह अच्छा नही कि
आने वाला युग
इतिहास नही
उसका आवरण ही देखे।

रास्ते का सुख

☐ कर्म/निर्माण गुप्त

आओ,
निष्प्रयोजन ही
इस सडक पर चले जो
कही नही जाती।
एक तो इस रास्ते पर
लोग आते ही बहुत
कम है, इसलिए
भीड मे ओझल होने
का भय न रहेगा।
और साथ ही
अपना यह मजिलहीन रास्ता
चलता ही रहेगा हमेशा
हमारे साथ।
इसी तरह बना रहेगा।
हमारा कभी न
खत्म होने वाला संग/साथ
मजिल हीन लोग
इसी तरह
रास्ते का सुख
उठाया करते हैं।

कथानायक

☐ प्रतिवादी

सुनील,
मेरा कथानक।

यथार्थ के अनुभवों
को लेकर मैं एक
कहानी लिखना चाहता हूँ
सुनील पर,

कुछ सोचने के लिए,
कुछ देखने के लिए
नजर घुमाई कि
एक जाला दीखा;
मकड़ी का जाला!
दीवार और छत की
संधि पर,
वीरान कोने में।
मकड़ी, छटपटा रही मकड़ी
मैं करुण हो उठा।
मानने की कोशिश करता हूँ
यही सुनील है
यही यथार्थ है
पर यथार्थ की कोई
सीमा नहीं
मैं झाड़न उठाता हूँ
और जाला झाड़कर
हटा देता हूँ
दीवार और छत की संधि

अब चमकती दीखती है
मकड़ी अब पूर्ण
स्वतन्त्र है।

सुनील आखिर मेरा
कथानक है
वह इतना
निराश पात्र क्यों हो ?

शब्द बोलते हैं

□ श्यार

अधखुली डायरी के
फड़फड़ाते पन्नों में
शब्द बोलते हैं।
कम बोलने के
मेरे स्वभाव को
अक्सर बोल-बोल
मुझे जगाते हैं
पर मैं अपने
पालतू शब्दों का
विद्रोह
अक्सर दबा दिया
करता हूँ।
शब्द चीखें या कि
चीखते-चीखते ही
दम तोड़ दें।
मैं
डायरी पूरे जोर से
बन्द कर देता हूँ
फिर भी
बार-बार, हर बार
अधखुली डायरी के
पन्नों में से
शब्द बोलते हैं।

अकेले साथी

□ विराग

मैं अकेला हूँ
सड़क भी अकेली,
हम दोनों अकेले हैं।
लोग देखते हैं, और
सोचते है कि
हम दोनों साथ है।
अकेलेपन् से
घबराकर मैंने
सोचा तो है,
यह भी सोचती होगी
इस शायद 'साथ है'
के बारे मे
पर इस तरह सोचते
हम दोनो
इतना निकल जाते है
जिसके आगे
अकेलेपन के सिवा
कुछ भी नहीं

ध्रुव

□ मौलिक साहता

नीले आकाश में
ध्रुव बनने की
कल्पना अब
मौलिक नहीं रही।
मैंने कई पक्षी
उड़ते देखे हैं
जिनकी आकाश से
मित्रता है,
बादल जिन्हें रोकते नहीं;
हवायें रास्ता
दे देती हैं।
मैंने आकाश की
पलकों पर
उन पक्षियों के चित्र
हावी होते देख लिये हैं
अब तो
आकश ही नया
बनाना होगा
पक्षियों की पहुंच
से दूर, सुदूर
ध्रुवों का कोई
आकाश
खोज रहा है मुझे

राग-प्रसव

□ नव प्रसूति सृजन

संगीत कैसा भी हो
सुरबद्ध स्वर साधना
प्रशंसनीय है।
मित्र कहते है
संगीत मे सर्वत्र
गौण अभिव्यक्ति होती है,
मैं मानता हूँ, संगीत
एक मुंहफट औरत है।
पर्यावरण का हर अंश
संगीत है, संगीत प्रेमी को।
'स्वर' टूटने का स्वर
भारी होता है, स्वर
जुड़ने का स्वर तीक्ष्ण।
संगीत एक सुर को
छोड़, स्वर को तोड़
फिर से जोड़ता है।
श्रोता की प्रशंसा
उकसाती है उसे बार-बार।
पर यह समझ पाना
तुम्हारी समझ से परे है कि
इस टूटन-जुड़न का
मध्यांतर कितना नीरस,
कितना बोझिल, कितना कठिन है ?
कुछ भी हो
एक नए राग का प्रसव होगा
तो प्रसव-पीड़ा
सहनी ही होगी।

भीड़ के बीच से

[illegible]

सड़क पर भीड़ है
मगर रास्ता तो
बनाना ही होगा.
साथ-साथ चलते
लोगों के बीच
विशाल दुनिया है।
गौर से देखो
और रास्ता बना लो।
आवाज दो किसी अनाम को
फिर भी कुछ ना बने तो
सड़क के किनारे उस 'पाथ' पर
अजूबा बन खड़े हो जाओ
चारों ओर मजमा हो जाएगा
भीड़ का/और
भीड़ की समझ तुम
समझते ही हो।
एकाएक सबके बीच में से
उठकर चल पड़ो बाहर
पाओगे भीड़ अपने-आप
विचित्र नजरों से देखती
रास्ता देगी
अकसर रास्ते
यूं ही बनाए/पाए
जाते हैं।

चितेरा

मैं, एक अनाड़ी चित्रकार
आधुनिकता के लबादे में
छिपी-ढकी जटिल रेखाओं की
तस्वीर में रंग भरने बैठा।
भावहीन-रूखा सा वह रेखाचित्र,
दो आतुर प्रेमी क्षितिज
में मिलते,
अरण्य के तमित कोने में
अकेला बैठा कोई वंशीधर,
अपने में समेटे था।
प्रकृति से जन्म लेकर भी
वह रंगहीन था।
रंगों को मिलाया
कौशल दिखाने की ललक में
मौलिकता भरने लगा।
ब्रुश चल उठे।
चित्र धीरे-धीरे
पूरा होकर बोल उठा।
मैंने देखा,
धरती लाल थी
आकाश स्लेटी-धुआ-धुआ सा
वंश पीले और
नीले रंग के दो वसनों में
कौन सा राग अलाप
रहा था।
क्षितिज तो

लाल और स्लेटी मिलकर
जाने कैसा सा
हो गया था ।
राह चलते, देखा
किसी ने, तो
हँसा और चल दिया
बोला
यह कैसा प्रकृति-चित्रण
पर मैं जानता हूं
सच यही है
आधुनिक प्रकृति का
इससे अच्छा चित्रण
कोई चित्तेरा भी
क्या कर पाएगा ?

बिजली का खम्भा

"फिर विवश उठी वह कगालिन
शोषण का चक्र घुमाने को
अपने बच्चो के आंसू पी
कुत्तो का दूध जुटाने को"

मैं

बिजली का खम्भा
अनगिनत तारों को
लिपटाये-उलझाए
अपने बदन पर
थामे रखता हूँ।
कभी किसी दिन
तेज आंधी में
लोग मुझसे चिढ़ने
से दीखते हैं
मैंने वो दिन भी
देखे हैं जब
बरसात में भीगे
मेरे बदन के साये से भी
लोग डरते हैं और
कतराते हैं/पर
फिर भी
अपने तमाम खतरे
मुझे देकर वे
लोग जो निश्चिन्त से

बैठे रहते हैं;
मेरे ही द्वारा
खींच कर लाई गई
शक्ति के प्रताप से ।
किसी रोज कहीं जो
मैं गिर पड़ा
उन्हीं के मकान पर
तो हरेक के
तार-तार लौटा दूंगा ।
फिर भी लोग
मुझसे अनजान होने
का ढोंग करते है
चाहे मे उनके
मकानों के बीच
संकरी गली में
खड़ा हूँ ।

मैं
बिजली का एक खंभा
गर्मी आंधी और
बरसात और सिकुडन भरी ठण्ड
सहकर भी
लोगों के लिए
वातानुकूलित चलाने का
प्रबन्ध करता हूँ ।

पूजा

□ आत्मज्ञान

चाहता हूँ
भगवान को छोड
स्वयं ही को
पूजा करूं !
कितने ही
सही निर्णयों का
कुछ तो
पुरस्कार दू
स्वयं को।

(फिर) सोचता हूँ
स्वय को
पूजा के विचार का
अभिमान
क्या कम है
पूजा के स्तर से
स्वय को
गिराने के लिए ?

देखा

□ विभारंजना

मेरी नग्न पीठ पर
इतने पास से समय से
चिपकी है
तुम्हारी नग्न आँखें!
नारी की नग्न पीठ,
पुरुष की नग्न आँखें?
मूक बलात्कार!
कब से जाने
सहना ही पड़ा है
क्या कुछ!
'कामुक प्रेमी हो तुम'
मेरा पहला विचार था।
टिप्पणी के उत्तर में
आँखों के हटने की
प्रतीक्षा में
समय भी वृद्ध
हो चला।
वक्ष के सफेद होते
रोएँ देख, मेरा
विचार बदल गया था
'तुम साधारण नही हो
जरूर दार्शनिक हो'
फिर भी तब से अब तक
पीठ से चिपकी आँखें,
आँखों से झांकता पौरुष!

चेहरे पर गम्भीर
दार्शनिकता
न तुमने कुछ कहा
न मैंने ही
पीठ और आखें
एक-दूसरे की ओर
नग्नता लिए हुए
निर्लिप्त-निर्विकार !
न पीठ ढंकने का ही
ख्याल आया और
न आँखों से हटने का
क्योंकि अब
मेरा स्पष्ट मत है
तुम देवता हो

तुम ही राम हो

□ आत्मचेतना

उठो बंधु,
ऊपर उठो
तुम्हें देवत्व
पाना है।
क्योंकि तुम्हारी नियति
मानव की नही
ईश्वरीय है।
तुम्हारा अन्तस
कोरा, रिक्त 'र' नही
पूर्ण 'राम' है।
लेकिन सबसे पहले
उस आभासी 'राम' को
उतार फेंको
जो ओढ़ा सा है।
राम-राम रटते
तुम 'राम' नही हुये ना ?
नही होगे।
तुम्हें राम का दास नही
राम-रट्टू नहीं
राम बनना है।
इसलिए राम-राम को
आराम दो।
शब्दों का यह जाल
उठाकर फेंक दो।
तुम्हारा भ्रम

समाप्त हुआ
उठो वत्स !
तुम राम हो
फिर राम शब्द से
कैसा मोह ?
तुम ही राम हो
चेतो वधु !

चुभास की कृति

☐ पीड़ा का सुख

जब भी कोई
शूल उगता है
देर तक
टीसती रहती है
उसकी चुभन
और बना ही रहता है
अहसास
उस शूल के होने का।
एक-एक करके
यूं सैकड़ों शूल
उभरते चले जाते हैं
तो आंगन में
एक कैक्टस जाग उठता है।
मैं व्याकुल सा
देर तक लोटता रहता हूं,
इस चुभास को सहता।
लेकिन फिर भी कोई
गहरा सोच बना ही रहता है।
सूने आंगन में
कोई कलाकृति
हर पल नजर आती है।
कैक्टस पर लेटी
किसी औरत का
चित्र
आंखों से हटता ही नहीं।

सेतुबन्ध पर

"जो ऊगै सो आथवै, जो फूले सो कुम्लाये
जो चिणिया सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाये"

—कबीर

यहां खड़ा रहकर
मैं देर तक
उफनती लहरों,
नावों के आने-जाने
और संध्या के
सिन्दूरी रंग बिखरने का
मनोहारी दृश्य
देख सकता हूं।
मैं जानने की
कोशिश कर सकता हूं
कि लहरों के उछाल
के पीछे
आखिर बात क्या है ?
समुद्र के लिए दिन कैसा है ?
रात क्या है ?
मैं समझ सकता हूं
हर-एक लहर के
चुपचाप दरिया में ही
सिमट जाने का
राज क्या है ?
मैं खोज सकता हूं
छिटकी हुई सीपों में
आखिर मोती

कहाँ छुआ है ?
पर यहाँ देर तक
यहाँ खड़ा रहने का
हक मुझे नहीं ।
मुझे इस सेतु से
उतर जाने को
नहीं भेजा गया ।
मेरा रास्ता अभी
लम्बा है…… …।
दो किनारों के
बीच बने इस सेतु पर
किसी जड़ सा
खड़ा रहकर, मैं
आने वाली सदियों का
इलजाम नहीं लेना चाहता ।

वृद्धा के कान

(उनके प्रति जो प्राकृतिक जीवन की चाह को दबाए बनावटी-पन में कही जी रहे हैं।)

कई बार मन होता है
कही दूर अनजान सी जगह
अपरिचितों के साथ खूब घूमूं,
जहां कोई मुझे 'ऐ' कहकर पुकारे।
'आप', 'तुम' सुनते-सुनते
कान भारी हो चले है।
अब इन सम्बोधनों के परिणाम को
किसी वृद्धा के
कुण्डल के बोझ से कटे कान देखकर
भाप लेता हू।
और किसी अजान जगह के लिए
चल देता हूं।
तहो मे कही कोई हल्की सी
खुशी छिपाकर मैं
अपने कान की कई परतें बना लेता हू
अच्छा ही होगा
कही कोई 'ऐ' का सबोधन
आया तो तहे भीतर तक सोख लेंगी !
किसी चतुर शिकारी सा जाल बुनकर
मैं घात लगाकर बैठ गया।
अभी एक भी 'ऐ' नही फसा।
फिर भी निराशा से बचने को
वृद्धा के, कुण्डल-भार से कटे-फटे
कानों का ध्यान कर

मैदम साधे बैठा रहा
हर रोज कानों की तहों में
कुछ घिसे-पिसे शब्द
सोखे जाते रहे।
एक दिन यूं ही जब
'ऐ' का स्वर सुनाई पड़ा
तो खुशी नहीं हुई
'शब्द' टकराकर लौट गया था,
कानों की तहों में छिपे। सोखे गए
आप-आप-आप के सम्बोधन
कानों के भीतर उतरने लगे थे।
अब, वृद्धा के कटे कान देख
मुझे हैरानगी। भय नहीं
केवल औपचारिक उत्सुकता सी
होती है।
सोच लेता हूं
जो कुण्डल का भार सहना ही है
तो कान कटेंगे/फटेंगे ही।

धुंध के उस पार

"उततें कोई न आवइ, जासों पूछू धाई
इततें तो सब जाइ है, भार लदाई-लदाई" —कबीर

आज पुनः त्रासदी हुई
जिसे अभी रहना था
चला गया ।
धुंध गहरी है, फिर भी
धुंध के उसपार के
संकेतों को जाने कैसे
देख लिया उसकी आंखों ने
बन्द होने से पहले ?
गहरी सहानुभूति है मगर
शरारती आंखों की चमक ने
कह ही डाला कि
अच्छा-लगता है कभी-कभी
कठोर सत्य का सामना करना !
झुकी गर्दनों और उठे कन्धों पर
साम्राज्य करता हुआ वह
अब कहां होगा
यह देखने के लिए कि
भीड में कौन-कौन शामिल है ?
फिर वह आंखें भी तो
बन्द हैं जो धुंध के आर-पार
देख,लेती हैं !
कितना खौफनाक है यह सोचना
कि धुंध अब छटने लगी है
और कहीं

'गीता' के अमरत्व सिद्धान्त में
जीवित वह और उसकी खुली आँखें
भीड़ मे शामिल हर शख्स की
पीठ से चिपकी हों !
...और वह अपनी आखो से
देख रहा हो, या कि
अपने कानों से सुन रहा हो
अपने 'कर्मों' का बखान !
वैसे भी तो वह
जीवन में
धुंध के उस पार देखने का
अभ्यस्त था।
लेकिन मैं जान गया हू
कितनी मुश्किलें है सच कहने मे
मैं कैसे कह दू कि
मैं
त्रासदियों में भी सत्य ढूंढता हू।

ठहरा पानी

रुके-सहमे जीवन के प्रति

मैं
ठहरा हुआ पानी
ठहराव को साथ
लेकर जन्मा, बरसात
में बढ़ा भी तो
ठहराव के साथ।
धूप में जलकर
भाप बनता जाता
मेरा मैं
सर्दियों में यही
जमकर बर्फ हो
जाता है।
अब तो धूल-मिट्टी
और हवा के साथ
सूखे पत्ते, कागज
और घास-पराली भी
आकर ठहरने लगे है
मेरे समूचे शरीर पर।
'काई' की लिजलिजी
काया लिपटी रहने लगी
है मुझसे।
मेरे सामने बहती
नहर में तो
लोग नहाते हैं और
दूर तक उसके साथ-साथ

बहते चले जाते हैं
पर मैं तो
खुद ही ठहरा हूँ
कोई क्या साथ बहे ?
हवा के तेज
झोंकों के साथ
कभी-कभी भ्रम होता है
लहरों का
मगर, चारों ओर का
कच्ची मिट्टी का
यह तट मुझे
बनाता रहता है
मेरी हद.
पता नहीं क्या-क्या
कहते हैं लोग
मेरे इस गंदलेपन के
बारे में ?
मैं तो ठहरा हूं
उड़कर आई गंदगी
को साथ ठहराए हुए
इन्तजार करता रहता
हूं
किसी बहाव का।

ठहरा पानी

रुके-सहमे जीवन के प्रति

मैं
ठहरा हुआ पानी
ठहराव को साथ
लेकर जन्मा, बरसात
में बढ़ा भी तो
ठहराव के साथ।
धूप में जलकर
भाप बनता जाता
मेरा मैं
सर्दियों में यही
जमकर बर्फ हो
जाता है।
अब तो धूल-मिट्टी
और हवा के साथ
सूखे पत्ते, कागज
और घास-पराली भी
आकर ठहरने लगे है
मेरे समूचे शरीर पर।
'काई' की लिजलिजी
काया लिपटी रहने लगी
है मुझसे।
मेरे सामने बहती
नहर में तो
लोग नहाते हैं और
दूर तक उसके साथ-साथ

बहते चले जाते हैं
पर मैं तो
खुद ही ठहरा हूँ
कोई क्या साथ बहे ?
हवा के तेज
झोकों के साथ
कभी-कभी भ्रम होता है
लहरों का
मगर, चारों ओर का
कच्ची मिट्टी का
यह तट मुझे
बनाता रहता है
मेरी हद,
पता नहीं क्या-क्या
कहते हैं लोग
मेरे इस गदलेपन के
बारे में ?
मैं तो ठहरा हूं
उड़कर आई गदगी
को साथ ठहराए हुए
इन्तजार करता रहता
हूं
किसी बहाव का।

समझौता

❑ तिनका चिड़िया की चोंच में

आओ मित्र !
हम और तुम
एक समझौता कर लें।
बात, जो मैं कहूं
शर्त ! जो तुम चाहो।
मिट्टी के फैले
श्यामल प्रसार पर
मेरी शक्ति
और तुम्हारे हल को
मिलाकर
स्वर्ण शस्य का;
धानी इतिहास
रच डालें,
इस पर या
तुम्हारा अधिकार
किसी का भी हो
मैं तो
केवल
निर्माण के सुख
का इच्छुक हूं।

काला-चिह्न

आराम कुर्सी पर अधलेटा
मैं रोज देखता हूँ
रोशनदान से छनकर आती
पीली धूप, जो
अगड़ाईयाँ लेती है
धरातल पाकर,
धरातल बनी है मेरे
आराम कमरे की
नीले रंग से पुती आलमारी।
अपलक निहारती धूप से
वह जैसे आलिङ्गनबद्ध सी
हो जाती है। और
मैं खीझता हूँ,
इसी धूप से पिघलकर
अलमारी के नीले रंग में
धब्बे से पड गए हैं,
चाहता हूँ धूप न आए
कभी नहीं!
एक पुराना अखबार
लगा देता हूँ रोशनदान पर,
वही समय होता है, और
अखबार के काले अक्षर
चमकने लगते हैं।
किंतु आज अलमारी पर

समझौता

☐ तिनका चिड़िया की चोंच में

आओ मित्र !
हम और तुम
एक समझौता कर लें।
बात, जो मैं कहूं
शर्त ! जो तुम चाहो।
मिट्टी के फैले
श्यामल प्रसार पर
मेरी शक्ति
और तुम्हारे हल को
मिलाकर
स्वर्ण शस्य का;
धानी इतिहास
रच डालें,
इस पर या
तुम्हारा अधिकार
किसी का भी हो
मैं तो
केवल
निर्माण के सुख
का इच्छुक हूं।

कला-चिह्न

आराम कुर्सी पर अधलेटा
मैं रोज देखता हूँ
रोशनदान से छनकर आती
पीली धूप, जो
अंगड़ाईयाँ लेती है
धरातल पाकर,
धरातल बनी है मेरे
आराम कमरे की
नीले रंग से पुती आलमारी।
अपलक निहारता धूप से
वह जैसे आलिङ्गनबद्ध सी
हो जाती है। और
मैं खीझता हूँ,
इसी धूप से पिघलकर
अलमारी के नीले रंग में
धब्बे से पड़ गए हैं,
चाहता हूँ धूप न आए
कभी नहीं!
एक पुराना अखबार
लगा देता हूँ रोशनदान पर,
वही समय होता है, और
अखबार के काले अक्षर
चमकने लगते हैं।
किंतु आज अलमारी पर

काली छाया है।
मन में एक टीस-सी
उठती है
सोचता हूँ
नीले रंग के बहने में
धूप का क्या दोष ?
रंग ही जो घटिया है
फिर धूप से बने
धब्बे तो
आधुनिक कला चिह्न
प्रतीत होते हैं।
क्षण-भर सोचता हूँ
और···उठकर
अखबार फाड़ डालता हूँ
निश्चय कर लेता हूँ
दीवाली पर इस बार
अलमारी को रंग नहीं करूँगा

अपने पक्ष में

□ स्वार्थी कविता

व्याग्र, आकुल
क्षुधातर पक्षी
आग्नेय नेत्रों से
अनिमेष निहारता
अपने भोजन की ओर।

किर्च-किर्च
कर्र…कर्र…कर्र
नीलपट्टा
पक्षी का भोजन,
मेरे पाँव तले आकर
कुचला गया।

क्या है यह विश्व ?
पक्षपाती दर्शन मात्र ?
'ए' सेन्सलैस धिग
शोकसभा नहीं
विसर्जन नहीं
उठाकर कूड़े में…।

चले हैं फिलास्फर बनने
सच कहना
तुम्हें किस बात का दुख है ?
क्षुधा पूर्ति में अड़चन…?

जीवन समापन का…?
अन्याय/पक्षपात का ?
शायद किसी का भी नहीं
तिलचट्टे के
कुचले जाने से
जो वमन की लहर
उठी है
तुम्हारे अन्दर तक
और तुम्हारा
जो किचकिचा रहा है
यह सब
उसी को ही
रोकने का प्रयास है।

शक्ति-बोध

☐ हम बहता जल पीने वाले

पंखों को बाँध,
शिथिल कर
मार देने का
तुम्हारा षड्यन्त्र
इसीलिए सफल
होता रहा है कि
बन्धने वाले पक्षी
अपने पंखो पर
शर्मिन्दा रहे होंगे,
वरना आओ,
तुम्हे तुम्हारी
हद दिखया दू ।
सच बतला दूँ
तुम बाँध सकने
और बाँधने की ही
इच्छा के लोभी
क्या जानो कि
पंखो मे
कितना दम होता है।

शहर की और सड़कें

☐ भौतिक-अभौतिक वर्मा

श्मशान को जाने वाली
सड़क में
पड़े गड्ढों पर
मेरे शहर के लोगों का
ध्यान तब-तब जाता है
जब-जब कंधों पर
अपने शहर का काम होता
व्यक्ति लादे, भीड़
इस सड़क से गुजरती है,
फिर जलती चित्ता के सामने
बैठकर, वक्त काटते लोगों
में/की सभा होती है
और इस सड़क को
सुधरवाने पर विचार होता है,
आखिर कठिनाई तो
हमें ही होती है
सड़क के गड्ढों का
गन्दा-काला, कीचड़ भरा पानी
हमारे ही कपड़ों पर पड़ता है।
लेकिन हर बार
मैं देखता हूँ
मुर्दा जला-लौट आए
लोगों के सामने

श्मशान की सड़क की
बात ही नही है,
उनका ध्यान शहर के
बाकी कीचड़ भरे गड्ढों मे
बँट गया है।
श्मशान वाली
सड़क की बात कौन सोचे ?
सुधरवाने के लिए
अभी शहर की
और बहुत-सी सडके है।

तारों पर कविता

□ माजे घना

हर रात आदमी
दूर-दूर तक
छिटके/छित्तरे
तारों को देखता है
आकाश में।
देखता है और
गिनने का
विफल यत्न
करता है।
पर दिन होते ही
तारों को तोड़
लाने के
मसूबे बांधने लगता है।
दावे/वादे करता है,
लेकिन मूर्ख आदमी।
कितने ही युग बीत गए
तारे तुम्हारे लिए
नही टूटे।
आदमी, वहीं का वहीं
वह का वह है।
आदमी, सिर्फ
तारों के सपने
देखता है
...और उन पर
कवितायें लिखता है।

नदी फिर नहीं बोली

☐ शांति-मग

नदी पहली बार
तब बोली थी
जब तुम्हारी नाव
उसका वक्ष चीरकर
सुदूर बढ़ती गई थी
लहरों ने उठ-उठ विरोध दर्शाया
पर तुम्हारे मजबूत हाथों में थमे
चप्पुओं ने विरोध नहीं माना,
तब तुमने
लोहे का, विशाल दैत्य-सा
घरघराता जहाज
उसकी छाती पर उतार दिया,
तुमने खूब रौंदा
उसकी कोमल देह को।
लहरों के साथ
दुहाई में उठे चार
तुमने नहीं सुना।
फिर कितने ही युद्धपोत
कितने ही जंगी बेड़े
इसके अंग-अंग में बसा
इसकी देहयष्टि को
अखाड़ा बना, क्रूर होकर
पूछा तुमने, बोलो!
क्या कहती हो?
नदी नहीं बोली
नदी फिर कभी नहीं बोली।

गवाह

☐ भीतर की बात

मृगतृष्णा की
परिभाषा
मुझ मायामृग से
बेहतर
शायद कोई
नही जानता होगा।
मेरे बूटों की
एड़ियाँ
इस बात की
गवाह हैं।

☐☐☐

मायामृग एक प्रगतिशील, संघर्षशील तथा अत्यधिक भावुक और संवेदनशील प्राणी का नाम है। उसका जन्म 26 अगस्त 1965 को फाजिल्का (पंजाब) में हुआ पर 6 सितम्बर 1965 से वह हनुमानगढ़ का निवासी है। यू धरती उसका घर है।

यायावरी, अध्ययन, अध्यापन और सत्संगति में उसकी विशेष रुचि है। 'दोस्ती' उसके लिए दुनिया का सबसे प्यारा रिश्ता है।

राष्ट्रप्रेम और आध्यात्मिक प्रवृत्ति मायामृग को अपने पिता श्री रोशनलाल प्रभाकर से विरासत में मिली है।

व ता के अलावा वह कहानियां, लघुकथायें भी लिख , छपता है, आकाशवाणी पर सुनाई देता है, नाटकों हिस्सा लेता है, उसके छोटे से जीवन के हर दिन का ा अलग इतिहास है।

—यायावर
द्वारा कुमार मोटर फैक्ट्री
रावतसर मार्ग
हनुमानगढ़ टाउन—335 573